बंगाल में इस्लाम का फैलना।

स्थापित मतों पर पुनः विचार

रिचर्ड ईटन

धर्म और भूगोल के बीच एकदिलचस्प रिश्ता है। धार्मिक विश्वासों के वितरण का नक्शा बहुत कुछ कहता है, उन विश्वासों के इतिहास के बारे में। प्राचीन साक्ष्य या स्रोत उपलब्ध न हों या कमज़ोर हों तो इतिहासकार मानचित्रों के द्वारा अपनी परिकल्पनाओं को जांच-परख सकता है। इस बात का सटीक उदाहरण ईटन के इस लेख में देख सकते हैं।

यह लेख रिचर्ड ईटन की चर्चित पुस्तक *'द राइज़ ऑफ इस्लाम एंड द बंगाल फ्रंटियर'* से अनुदित किया गया है। यह पुस्तक एक व्यापक सवाल का अध्ययन है – जनसामान्य के धार्मिक आस्थाओं में बड़े पैमाने पर परिवर्तन कैसे आता है; परिवर्तन क्यों आता है; किस तरह आता है और किन बातों में आता है? इस अध्ययन के लिए 'केस स्टडी' के रूप में उन्होंने बंगाल, खासकर पूर्वी बंगाल, के इस्लामीकरण को चुना है जहां का कृषक समाज आज मुख्य रूप से इस्लाम धर्म को मानता है।

प्रस्तुत लेख अकाट्य प्रमाणों के आधार पर स्थापित करता है कि सामान्य लोग अपना धर्म या विश्वास, भय, लालच या उत्तेजना में आकर नहीं बदलते। ऐसा सोचना ही उनके ईमान की तौहीन है। सामान्य लोग और उनके विश्वासों के अध्ययन में ईटन का सबसे बड़ा योगदान इसी बात में है।

धार्मिक परिवर्तन के बारे में ईटन के निष्कर्ष क्या हैं इस पर हम आगे के अंकों में और चर्चा करेंगे।

– सपादक

"1872 की जनगणना से सर्वाधिक रुचिकर तथ्य यह उभरा कि निचले बंगाल के मुसलमान पुरानी राजधानियों के इर्द-गिर्द नहीं बल्कि डेल्टा के उर्वर मैदान में बसे थे।"

जेम्स वाइज, सन् 1899

भारत में इस्लाम का फैलना: चार परंपरागत सिद्धांत

भारत में इस्लाम के विकास की व्याख्या करने वाले सिद्धांत चार तरह के तर्कों में विभाजित किए जा सकते हैं, हालांकि इनमें से कोई भी अपने आप में पूर्ण नहीं है।

1. प्रवासी सिद्धांत:

प्रथमत: जिसे मैं 'प्रवासी सिद्धांत' कहूंगा। वास्तव में यह धर्मांतरण का सिद्धांत नहीं है क्योंकि इस मत ने इस्लामीकरण को वैचारिक प्रसरण का नहीं बल्कि इस्लाम के मानने वालों का फैलाव समझा है। इस मत के अनुसार भारतीय मुस्लिमों का अधिकांश हिस्सा उन मुस्लिमों का वंशज है जो या तो ईरानी पठार से भूमार्ग द्वारा आए या अरब सागर के जलीय मार्ग से। यद्यपि इस तरह की कुछ प्रक्रिया ने ईरानी प्रायद्वीप और अरब सागर के समीपवर्ती क्षेत्रों के इस्लामीकरण में निस्संदेह योगदान दिया है परंतु जैसी कि आगे चर्चा करेंगे, इस तर्क का प्रयोग बंगाल में आम जनता के इस्लामीकरण की व्याख्या करने में नहीं किया जा सकता।

2. तलवार धर्म:

भारत में इस्लामीकरण की व्याख्या के सर्वाधिक पुराने सिद्धांत को मैं 'तलवार धर्म' सिद्धांत कहना चाहूंगा। यह भारत के अलावा दूसरे देशों में भी इस्लाम के प्रसार में सैनिक शक्ति की भूमिका पर बल देता है। मध्य-कालीन धर्मयुद्धों के समय से प्रचलित इस विचारधारा को 19वीं सदी में बड़ा समर्थन मिला जब मुसलमानों पर यूरोपीय साम्राज्यवादी प्रभाव अपनी चरम सीमा पर था। इसके बाद 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में विश्वव्यापी इस्लामी सुधार आंदोलन के दौरान भी इसे काफी महत्व मिला। इसका सामान्य सुर 19वीं और 20वीं सदी के *ओरिएंटलिस्ट* विद्वानों द्वारा सातवीं सदी में अरब में इस्लाम के उत्थान की व्याख्या के उत्तेजक सुर से मेल खाता है। उदाहरणार्थ सन् 1898 में सर विलियम म्यूर द्वारा लिखित पंक्तियों को देखें:

"युद्ध की खुशबू ने ही अरब कबीलों की सुप्त ऊर्जा को उत्सुक वफादारी में बदल दिया। योद्धाओं के बाद योद्धा, पलटन के बाद पलटन, पूरे-के-पूरे कबीलों की अंतहीन शृंखला, औरतों और बच्चों के साथ युद्ध के लिए निकल पड़ी। जीते गए शहरों, गणना से परे की लूट की रकम और हर व्यक्ति के लिए एक या दो कुंवारी युवतियों की उपलब्धता की रोचक और अनोखी कहानियां नये कबीलों के इसमें शामिल होने के कारण बने। छत्तों से निकली मधुमक्खियों या टिड्डों के उड़ान दल की तरह – ये कबीले बहुत बड़ी संख्या में पहले उत्तर की ओर, और वहां से पूर्व और पश्चिम की ओर फैल गए।"

मगर ऐसे सनसनीखेज बयान के बाद अरब विजयों की व्याख्या करने के प्रयास में म्यूर बहुत कम ठोस तथ्य दे पाते हैं। बल्कि वे सरलता से अरबों की 'युद्ध खुशबू', 'लूट' के प्रति आकर्षण और 'एक या दो कुंवारी युवतियों' के वादे पर बल देते हैं। असल में म्यूर जुझारू और पुनरुत्थानवादी इस्लाम के बेकाबू हो जाने की आशंका से ग्रस्त थे। इस आशंका के पीछे न केवल मध्यकालीन यूरोपीय पूर्वाग्रह थे जो इस्लाम को युद्ध और सेक्स से जोड़ते थे बल्कि यह भय भी था कि पुराने यूरोपीय साम्राज्यों के शासित मुसलमान टिड्डीदल की तरह उठ खड़े होकर यूरोपियों को यूरोप में वापस ठेल देंगे। आखिर सर विलियम म्यूर स्वयं भी तो औपनिवेशिक भारत में वरिष्ठ अधिकारी तथा ईसाई मिशनरी आंदोलन के आक्रामक कार्यकर्त्ता थे!

अगर औपनिवेशिक अधिकारी यह कल्पना कर सकते थे कि इस्लाम के विकास का कारण इसका जुझारुपन था, तो भारत में भी इसके विस्तार की इसी तर्ज़ पर व्याख्या करना स्वाभाविक था।

फिर भी, जैसे कि पीटर हार्डी ने कहा है, वे लोग जिनका तर्क है कि भारतीय मुसलमानों का बलात धर्मांतरण हुआ था सामान्यतः 'बल' या 'धर्मांतरण' को परिभाषित करने में असफल रहे हैं। वे लोगों को यह मानने के लिए छोड़ देते हैं कि कोई समाज तलवार के दबाव में आकर, अपना धार्मिक स्वरूप बदल सकता है और बदल ही लेगा। वास्तव में यह कैसे होता है इस बात की सैद्धांतिक या व्यावहारिक संदर्भ में कभी भी संतोषप्रद व्याख्या नहीं की गई। बल्कि इस सिद्धांत को मानने वाले और आगे बढ़ाने वाले, इस्लामी धर्मांतरण को उत्तरी भारत में 1200 से 1760 के बीच तुर्क-ईरानी शासन के विस्तार से उलझाते हुए दिखते हैं।

इस गलतफहमी की शुरुआत संभवतः भारत में 'इस्लामी' विजय का वर्णन करती फारसी साहित्यिक रचनाओं के शाब्दिक अनुवाद से हुई।

जैसा कि योहानन फ्रायडमन ने दिखाया है इन वर्णनों में इस तरह के अस्पष्ट मुहावरे लगातार मिलते हैं जैसे 'उन्होंने इस्लाम के प्रति समर्पण किया'। इस जगह इस्लाम का अर्थ धर्म, मुस्लिम राज्य या 'इस्लाम की सेना' हो सकता है। लेकिन सामान्यतः इन गद्यांशों को उनके संदर्भ में देखने पर अंतिम दो अर्थ ही स्वीकार्य लगते हैं। विशेषतः इसलिए क्योंकि ये स्रोत सामान्यतः भारतीय-तुर्की सेना को लश्कर-ए-इस्लाम या 'इस्लाम की सेना' कहते हैं, न कि 'लश्कर-ए-तुर्कान' या तुर्कों की सेना। दूसरे शब्दों में यह भारतीय मुस्लिम राज्य और विशेषकर इसकी सैनिक शक्ति थी जिसके प्रति लोगों ने समर्पण किया, न कि इस्लाम धर्म के प्रति।

यह सिद्धांत दक्षिण एशिया के धार्मिक भूगोल पर भी फिट नहीं बैठता। अगर इस्लामीकरण सैनिक या राजनैतिक बल से हुआ तो यह आशा की जाएगी कि वे सभी क्षेत्र जो मुस्लिम राजवंशों के प्रभाव क्षेत्र में सबसे लंबे समय तक रहे – अर्थात जो पूर्णतः 'तलवार' के सामने थे – वहां आज मुसलमानों की संख्या ज़्यादा होनी चाहिए। मगर मामला बिलकुल उल्टा है। उदाहरणार्थ – पूर्वी बंगाल या पश्चिमी पंजाब, जहां इस्लामीकरण अधिक हुआ, भारतीय मुस्लिम शासन की बाहरी सीमा पर थे – जहां तलवार की धार दुर्बल थी और जहां क्रूर बल का प्रभाव भी न्यून रहा होगा।

इन क्षेत्रों में प्रथम जनगणना रिपोर्ट (1872) ने मुस्लिम जनसंख्या को कुल जनसंख्या के 70 से 90 प्रतिशत के बीच दर्शाया। जबकि मुस्लिम शासन के केन्द्र, गंगा के ऊपरी मैदान में (दिल्ली-आगरा के क्षेत्र में), जहां इस्लामी शासन सर्वाधिक सघन और लंबे समय तक था, इस्लामी जनसंख्या 10 से 15 प्रतिशत के बीच ही थी। दूसरे शब्दों में पूरे प्रायद्वीप में मुस्लिम राजनैतिक सत्ता की मात्रा तथा इस्लामी धर्मान्तरण की मात्रा में विपरीत संबंध दिखते हैं। यहां तक कि बंगाल में भी यही बात देखी जा सकती

अगर इस्लामीकरण सैनिक या राजनैतिक बल से हुआ तो यह आशा की जाएगी कि वे सभी क्षेत्र जो मुस्लिम राजवंशों के प्रभाव क्षेत्र में सबसे लंबे समय तक रहे – अर्थात जो पूर्णतः 'तलवार' के सामने थे – वहां आज मुसलमानों की संख्या ज़्यादा होनी चाहिए। मगर मामला बिलकुल उल्टा है।

है। जैसा कि 1901 की जनगणना से पता चलता है:

"इन पूर्वी ज़िलों में से कोई भी जगह मुसलमान शासकों के मुख्यालय के रूप में प्रसिद्ध नहीं है। ढाका में नवाब का निवास लगभग सौ वर्षों तक था परंतु यहां की मुस्लिम आबादी फरीदपुर ज़िले के सिवा, आस-पास के और किसी भी ज़िले की तुलना में कम है। मालदा और मुर्शिदाबाद पुरानी राजधानियां थीं और यहां मुस्लिम शासन का केन्द्र लगभग साढ़े चार सौ वर्षों तक रहा, तब भी इनके पास के ज़िलों दीनाजपुर, राजशाही तथा नादिया की तुलना में यहां की मुस्लिम आबादी का प्रतिशत कम है।"

इस जगह यह भी सुझाया गया है कि मुस्लिम सत्ता के केन्द्र से निकटता ने वास्तव में कई जगहों पर इस्लामीकरण को समर्थन देने की जगह अवरुद्ध किया। एस. एल. शर्मा और आर. एन. श्रीवास्तव के अनुसार राजस्थान के आंशिक रूप से धर्मांतरित 'मेव' समुदाय के प्रति मुगल दमन ने उस समुदाय की मुस्लिम पहचान को मज़बूत नहीं किया, बल्कि इस्लाम के प्रति उनके विरोध को ही सुदृढ़ किया।

3. संरक्षण सिद्धांत:

भारत में इस्लामीकरण की व्याख्या करने हेतु सामान्य तौर पर विकसित तीसरे सिद्धांत को मैं 'संरक्षण सिद्धांत' कहूंगा। इसमें ऐसा कहा जाता है कि मध्यकालीन भारतीयों ने शासक वर्ग से धर्मेतर लाभ मसलन, करों में छूट, शासन में पदोन्नति आदि प्राप्त करने हेतु इस्लाम स्वीकार कर लिया। यह सिद्धांत पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त धर्म निरपेक्ष समाज शास्त्रियों को हमेशा प्रिय रहा है और उनकी नज़र में कोई भी धर्म कुछ गैर धार्मिक कारकों पर निर्भर है, जिसके मूल में सामाजिक प्रतिष्ठा या अपना स्तर ऊंचा करने की इच्छा होती है।

भारतीय इतिहास के अनेक उदाहरण इस सिद्धांत का समर्थन करते हैं। 14वीं सदी के प्रारंभ में इब्न बतूता लिखता है कि भारतीय अपने आपको खलजी सुल्तानों के समक्ष नवदीक्षितों (अभी-अभी धर्मान्तरित) के रूप में प्रस्तुत करते थे और सुल्तान उन्हें उनके स्तर अनुरूप सम्मान सूचक पोशाक से पुरस्कृत करते थे। 19वीं सदी की जनगणनाओं से यह पता चलता है कि उत्तरी भारत के अनेक ज़मींदारों ने भूराजस्व की गैर अदायगी पर मिलने वाली कैद से बचने के लिए या पैतृक संपत्ति को परिवार में ही रख सकने के लिए, अपने आपको मुसलमान घोषित कर दिया था। इस सिद्धांत को उन समूहों पर भी लागू कर सकते हैं जिन्हें मुस्लिम शासकों ने रोज़गार दिया था तथा जिन्होंने बिना औपचारिक धर्मांतरण के भी काफी कुछ इस्लामी

संस्कृति को अपना लिया था।

गंगा के मैदान में कायस्थ तथा खत्री, महाराष्ट्र में पारसी और सिंध में आमिलों ने सरकार की प्रशासनिक सेवकों तथा बाबुओं की ज़रूरत पूरी करते समय काफी कुछ इस्लामी संस्कृति के तत्वों को अपनाया। अज़ीज़ अहमद इस प्रक्रिया की तुलना 19वीं और 20वीं सदी के 'पश्चिमीकरण' से करते हैं। इसी तरह दासों और युद्ध में बंदी बनाए गए सैनिकों की संस्कृति में परिवर्तन भी एक अलग पहलू है। परिवार से दूर और घर-गांव के स्थानीय सामाजिक सांस्कृतिक बंधनों के अभाव में कोई आश्चर्य नहीं कि ये लोग अपने संरक्षकों के सांस्कृतिक घेरे में आ गए हों।

यद्यपि यह मान्यता भारत के राजनैतिक केन्द्र में कम इस्लामीकरण की व्याख्या तो कर सकती है परंतु राजनैतिक सत्ता की सीमाओं के पास पंजाब और बंगाल में हुए बृहत स्तरीय धर्मांतरण की व्याख्या नहीं कर सकती। 'तलवार के प्रभाव' की तरह राजनैतिक संरक्षण का प्रभाव भी राजनैतिक मुख्यालय से दूरी बढ़ने पर, बढ़ने की जगह घटा ही होगा। असल में हमें एक ऐसे सिद्धांत की ज़रूरत है जो न केवल मुस्लिम सत्ता के केन्द्र तथा अभिजात्य वर्ग के बीच हुए इस्लामीकरण की व्याख्या करे बल्कि इससे दूर लाखों किसानों के बीच हुए व्यापक इस्लामीकरण को भी समझाए।

4. सामाजिक मुक्ति सिद्धांत:

इस जगह एक चौथा सिद्धांत उपयोग में आता है जिसे मैं 'सामाजिक मुक्ति दिलाने वाले धर्म का सिद्धांत' कहूंगा। ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा रचित, पाकिस्तान और बांग्लादेशीय नागरिकों द्वारा 'पुष्पित पल्लवित' तथा दक्षिण एशिया के अनगिनत पत्रकारों, विशेषत: मुस्लिमों, द्वारा समर्थित यह सिद्धांत काफी लंबे समय तक इस उपमहाद्वीप में इस्लामीकरण की सबसे स्वीकृत व्याख्या करता रहा है। इस सिद्धांत के अनुसार हिन्दू जाति व्यवस्था लंबे काल से परिवर्तनहीन तथा अपनी निम्न जातियों के प्रति भेदभावपूर्ण रही है।

ऐसा कहा गया कि सदियों तक इन निम्न जाति के लोगों को ऊंची जातियों, विशेषत: ब्राह्मणों, के दमनकारी और क्रूर शासन में रहना पड़ा। जब इस्लाम अपने साथ सामाजिक समानता का संदेश लाया, जिसका प्रचार सूफी शेखों ने किया था, तो अब तक वर्जित सामाजिक समानता के प्रति जागरूक ये दलित जातियां ब्राह्मणवादी दमन से बचने के लिए सदल-बल इस्लाम में धर्मांतरित हो गईं।

इस सिद्धांत के अन्तर्गत 'इस्लाम में अंतर्निहित न्याय की भावना' तथा

सन् 1872 में बंगाल में मुस्लिम आबादी का वितरण*

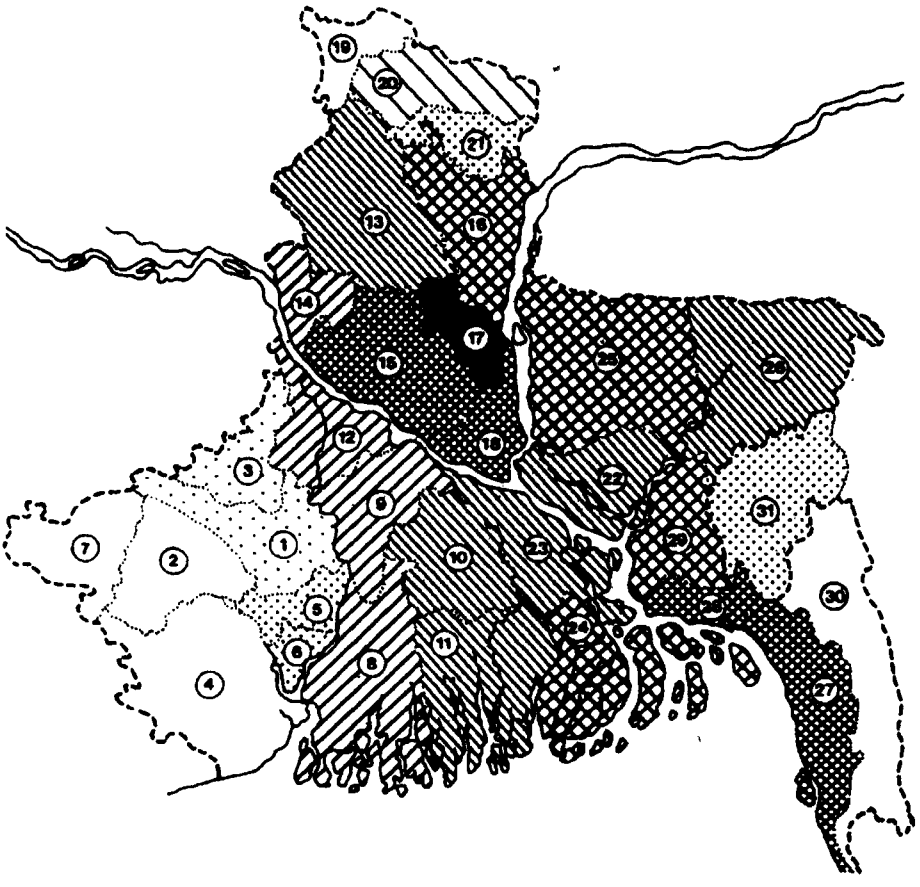

1. बर्दवान, 2. बांकुरा, 3. बीरभूम, 4. मिदनापुर, 5. हुगली, 6. हावड़ा, 7. मानभूम, 8. चौबीस परगना, 9. नादिया, 10. जेसोर, 11. खुलना, 12. मुर्शिदाबाद, 13. दीनाजपुर, 14. मालदा, 15. राजशाही, 16. रंगपुर, 17. बोगरा, 18. पाबना, 19. दार्जिलिंग, 20. जलपाईगुड़ी, 21. कूच बिहार, 22. ढाका, 23. फरीदपुर, 24. बकारगंज, 25. मैमनसिंह, 26. सिलहट, 27. चटगांव, 28. नौआखाली, 29. कुमिल्ला, 30. चटगांव पहाडी, 31. त्रिपुरा

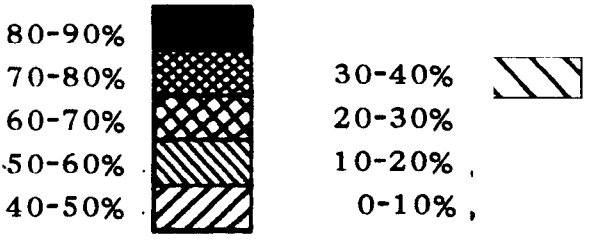

* 1872 की पहली जनगणना के आधार पर

'हिन्दू समाज की अंतर्निहित दुष्टता' को आमने-सामने कर धर्मांतरण हेतु ऐसे मंतव्य खोजने का प्रयास दिखता है जो मुस्लिम दृष्टिकोण में अत्यंत ही प्रशंसनीय हैं। मगर यहां समस्या यह है कि इस सिद्धांत के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं पाया जा सकता। इसके अतिरिक्त यह स्पष्टतः तर्क से परे भी है। प्रथमतः यह आज के मूल्यों को अतीत के लोगों पर थोपना है। इससे ऐसा लगता है कि मुस्लिम संपर्क से पूर्व भारत की निम्न जातियां संपूर्ण मानवता की मौलिक समानता के बारे में उसी तरह के विचार रखती थीं जैसे कि रूसो तथा थॉमस जेफर्सन के लेखन में प्रतिपादित हैं।

जबकि वास्तव में मध्यकालीन मुस्लिम बुद्धिजीवियों ने इस्लाम और भारतीय धर्मों पर विचार करते हुए अपने धर्म की सामाजिक समानता का हिन्दुओं की असमानता के विरुद्ध चित्रण नहीं किया था बल्कि इस्लाम के 'एकेश्वरवाद' तथा हिन्दुओं के 'बहुईश्वरवाद' के बीच विरोध पर बल दिया था। अतः दोनों सभ्यताओं की तुलना करने का उनका ढांचा धार्मिक था, न कि सामाजिक।

वास्तव में यह विचार कि इस्लाम सामाजिक समानता का उन्नायक है, बहुत हाल की धारणा है जो फ्रांसीसी क्रांति की बौद्धिक विरासत के रूप में 19वीं सदी के मुस्लिम सुधारकों में दिखाई देती है।

दूसरे अगर यह मान भी लें कि भारतवासी मानव-मात्र की मौलिक समानता में विश्वास रखते थे तथा इस्लाम को उनके समक्ष सामाजिक समानता वाली विचारधारा के रूप में प्रस्तुत किया गया था, हालांकि दोनों ही बातें गलत प्रतीत होती हैं। इसके पर्याप्त उदाहरण हैं कि वे निम्न जातियां धर्मांतरण के उपरांत भी अपनी सामाजिक हैसियत को उठाने में असफल रहीं। इसके विपरीत वे मुस्लिम समाज में अपनी पहले की जातिगत पहचान के साथ पहुंचीं। यह बंगाल के लिए विशेष रूप से सत्य है।

जैसा कि जेम्स वाइज़ ने 1883 में लिखा, "भारत के अन्य भागों में सफाई का काम अछूत हिन्दुओं द्वारा किया जाता है। लेकिन बंगाल में मुसलमानों को ही ऐसे वीभत्स काम करने पड़ते हैं। मुसलमान ग्रामों के बेलदार (मरे जानवरों को हटाने वाले) हिन्दू ग्रामों में भुइमालियों की तरह ही हैं तथा यह संभावना से परे नहीं है कि इनके पूर्वज भी इसी घृणित जाति के हों।"

अंततः तलवार धर्म तथा संरक्षण सिद्धांत की तरह 'सामाजिक मुक्तिवादी धर्म सिद्धांत' को भी भूगोल के तथ्य गलत बताते हैं। 1872 में जब प्रथम

दक्षिणी एशिया के मुसलमानों का वर्तमान वितरण स्पष्ट संकेत देता है कि इस सिद्धांत के पूर्वानुमान पूर्णतः गलत हैं क्योंकि, ब्राह्मणवादी सभ्यता के कम संपर्क में रहे इन क्षेत्रों में अधिक इस्लामीकरण हुआ। चूंकि भारत के सीमावर्ती क्षेत्र में रहने वाले लोग ब्राह्मणों की सामाजिक व्यवस्था के प्रभाव में पूर्णतः नहीं आए थे, तो उनके इस दमनकारी व्यवस्था से छुटकारा पाने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

विश्वसनीय जनगणना हो रही थी, मुसलमानों का जमाव सर्वाधिक पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमा क्षेत्र तथा बलूचिस्तान में पाया गया। इन क्षेत्रों के संबंध में विशेष बात यह है कि ये न सिर्फ मुस्लिम सत्ता केन्द्र से काफी दूर थे बल्कि इस्लाम से संपर्क के समय यहां की जनता हिन्दू या बौद्ध सामाजिक व्यवस्था से भी पूर्णतः जुड़ी नहीं थी। बंगाल में इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाले लोग मूलतः राजवंशी, पोड, चांडाल, कच और अन्य स्थानीय समुदायों से थे जिनका संपर्क ब्राह्मण संस्कृति से बहुत कम था। इसी तरह पंजाब के मुसलमानों का बड़ा वर्ग उन अनेक जाट वंशों से आया है जो ब्राह्मण व्यवस्था के प्रभाव में नहीं थे।

इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। पांचवीं-छठी सदी ई. पू. का उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथ 'बौधायन धर्मसूत्र' स्वघोषित 'स्वच्छ' जातियों के मानदंड को अपनाते हुए उपमहाद्वीप को तीन वृत्तों में विभाजित करता है – एक के बाहर दूसरा और उसके बाहर तीसरा। प्रत्येक में विशिष्ट सामाजिक सांस्कृतिक समुदाय रहते हैं। इनमें से प्रथम है आर्यावर्त जो ऊपरी गंगा-जमुना क्षेत्र में फैला है और जहां ब्राह्मणवादी परंपरा के 'शुद्धतम' उत्तराधिकारी रहते हैं; जो अपने आप के बारे में मानते हैं कि वे उच्च जाति के हैं और पवित्र हैं।

दूसरे भाग में बाहरी क्षेत्र हैं (अवंति, अंग, मगध, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, उपवृत और सिन्धु-सौवीर) जो आधुनिक मालवा, पूर्वी और मध्य बिहार, गुजरात, दक्कन तथा सिंध में फैला है। यह क्षेत्र आर्यों की परिधि में है पर यहां के निवासी

'मिश्रित उत्पत्ति' के हैं और इन्हें उतना पवित्र नहीं माना गया, जितना कि प्रथम क्षेत्र के लोगों को।

तीसरे भाग में वे बाहरी क्षेत्र हैं जहां इतने गंदे तथा 'अपवित्र' कबीले रहते हैं कि उन क्षेत्रों का भ्रमण करने वालों के लिए प्रायश्चित की व्यवस्था की गई। इस तीसरे भाग के रहवासी पंजाब के अरट्ट, दक्षिणी पंजाब व सिंध के सौवीर, उत्तर बंगाल के पुण्ड्र और मध्य तथा पूर्व बंगाल के वंग थे।

सामाजिक मुक्ति का सिद्धांत यह मानकर चलता है कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था ऊंच-नीच के भेद से भरी थी तथा इसके शीर्ष पर दमनकारी ब्राह्मण जमे हुए थे।

लेकिन अगर यह सिद्धांत सही होता तो इस्लाम में धर्मांतरण की सर्वाधिक घटना तार्किक रूप से आर्यावर्त के उस हृदय क्षेत्र में होनी चाहिए थी जहां ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था जड़ जमाए बैठी थी। इसके विपरीत इस्लाम के समर्थक उन क्षेत्रों में बहुत ही कम होने चाहिए थे जिनका ब्राह्मणवादी सभ्यता से कम संपर्क था और जो बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार सबसे बाहरी घेरे में थे।

परंतु ये मूलतः बाहरी घेरे के वही क्षेत्र हैं जहां दक्षिणी एशिया के मुसलमानों का अधिकांश हिस्सा रहता है। अतः दक्षिणी एशिया के मुसलमानों का वर्तमान वितरण स्पष्ट संकेत देता है कि इस सिद्धांत के पूर्वानुमान पूर्णतः गलत हैं क्योंकि, ब्राह्मणवादी सभ्यता के कम संपर्क में रहे इन क्षेत्रों में अधिक इस्लामीकरण हुआ। चूंकि भारत के सीमावर्ती क्षेत्र में रहने वाले लोग ब्राह्मणों की सामाजिक व्यवस्था

ब्रिटिश गतिविधियों का केन्द्र हिन्दू बहुल क्षेत्र दक्षिण–पश्चिम बंगाल में था और उनके लिए 19वीं सदी में बंगाल के पूर्वी ज़िले बृहत और दूरवर्ती थे, जहां की संस्कृति से वे बिल्कुल अपरिचित थे। फलतः जब प्रांत की 1872 की प्रथम सरकारी जनगणना में चटगांव, नोआखाली, पाबना तथा राजशाही ज़िलों में मुसलमानों की आबादी कुल जनसंख्या के 70 प्रतिशत से अधिक तथा बोगरा ज़िले में 80 प्रतिशत से भी अधिक दिखी तो वे बेहद आश्चर्य-चकित हुए।

प्रभाव में पूर्णतः नहीं आए थे, तो उनके इस दमनकारी व्यवस्था से छुटकारा पाने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

मुस्लिम आबादी कहां और कितनी

अंग्रेज़ों की चेतना में बंगाल की पूरी मुस्लिम आबादी का चित्र काफी देर से उभरा। ब्रिटिश गतिविधियों का केन्द्र हिन्दू बहुल क्षेत्र दक्षिण–पश्चिम बंगाल में था और उनके लिए 19वीं सदी में बंगाल के पूर्वी ज़िले बहुत बड़े और दूर-दूर तक फैले हुए थे, जहां की संस्कृति से वे बिल्कुल अपरिचित थे।

फलतः जब प्रांत की 1872 की प्रथम सरकारी जनगणना में चटगांव, नोआखाली, पाबना तथा राजशाही ज़िलों में मुसलमानों की आबादी कुल जनसंख्या के 70 प्रतिशत से अधिक तथा बोगरा ज़िले में 80 प्रतिशत से भी अधिक दिखी तो वे बेहद आश्चर्यचकित हुए।

1894 में प्रांत के एक अनुभवी सरकारी अधिकारी जेम्स वाइज़ ने लिखा, "1872 की जनगणना से सर्वाधिक रुचिकर तथ्य यह उभरा कि बंगाल में मुस्लिम निवासियों का समूह निचले बंगाल में पुरानी राजधानियों के इर्द-गिर्द नहीं बल्कि डेल्टा के उर्वर मैदान में बसा था।" उसने आगे लिखा, "निचले और पूर्वी बंगाल में इस्लाम के प्रसार का इतिहास आज इतना महत्वपूर्ण है कि उसके एक सूक्ष्म व गहन अध्ययन की आवश्यकता है।"

निश्चित ही इस विषय का सूक्ष्म अध्ययन किया गया। 1872 की जनगणना ने एक गरमागरम बहस की शुरुआत की जो 20वीं सदी में भी जारी रही। जनगणना अधिकारी हेनरी बेवरली ने स्वयं इस बहस की शुरुआत की। मुस्लिम सत्ता के पुराने क्षेत्रों से दूर मुसलमानों की बहुसंख्या पाए जाने के असंगत तथ्य पर गौर करते हुए उसने लिखा, "बंगाल में मुसलमानों का अस्तित्व इस देश में मुगलों के प्रवेश की वजह से उतना नहीं है जितना कि पुराने बाशिंदों के धर्मांतरण की वजह से, क्योंकि इनके लिए कठोर जाति व्यवस्था के चलते हिन्दू-धर्म असहनीय हो गया था।"

संक्षेप में उसने 'प्रवासी सिद्धांत' को खारिज़ किया तथा 'सामाजिक मुक्ति सिद्धांत' के प्रारंभिक प्रारूप की रूपरेखा खींची। तब से यह सिद्धांत इस प्रांत में इस्लामीकरण के विषय में ब्रिटिश सोच पर हावी हो गया और बाद में ज़्यादातर मुसलमान भी इस पर यकीन करने लगे।

व्याख्या को चुनौती

लेकिन बेवरली की व्याख्या चुनौतीविहीन नहीं रही। 1872 की

जनगणना के निष्कर्षों के प्रकाशन के तुरंत बाद मैमनसिंह ज़िले के एक मुस्लिम भद्र पुरुष अबू गज़नवी ने अपने ज़िले के कलेक्टर को एक रिपोर्ट दी जिसमें उसने बेवरली के इस कथन का कि 'बृहत स्तरीय धर्मांतरण' हुआ है, कड़ा विरोध जताया। गज़नवी ने बताया, "आधुनिक मुसलमानों में से अधिकांश चांडालों और कैवर्तों के वंशज नहीं हैं बल्कि विदेशी मूल के हैं, यद्यपि अनेक मुसलमानों में इस विदेशीपन की मात्रा कम या अधिक हो सकती है।"

अपने कथन के पक्ष में गज़नवी ने कई उदाहरण दिए जैसे: तुर्कों की विजय के पूर्व अरबों का आकर बसना, सुल्तान हुसैन शाह द्वारा विदेशियों को भूमि अनुदान देना, मुगलों की विजय के बाद 'हर बस्ती' में अफगानों का बसना, मुसलमानों में बहु-पत्नि प्रथा, विधवा विवाह, अतिदीर्घायुता एवं संस्थागत ब्रह्मचर्य की अनुपस्थिति से उपजी अधिक जनन उर्वरता आदि। उन्होंने यह भी माना कि कुछ धर्मांतरण भी हुआ है परंतु बलपूर्वक निम्न जातियों के धर्मांतरण से इंकार किया। "हम केवल निम्न हिन्दू जातियों के धर्मांतरण की ही बात क्यों करें"

उन्होंने पूछा, "हमें विभिन्न ज़िलों, विशेषकर मैमनसिंह के मुस्लिम राजपूत दीवानों को नहीं भूलना चाहिए – इसी तरह सिलहट के मजूमदार हैं, फरीदपुर के राजा साहब हैं, विक्रमपुर के गांगुली हैं एवं अन्य कई समूह हैं।"

गज़नवी इस तरह प्रवासी सिद्धांत की रूपरेखा तैयार कर रहे थे। यह मत पूरे भारत में अशरफ वर्ग को प्रिय रहा है। जहां तक स्थानीय स्तर पर धर्मांतरण की बात है गज़नवी ने तर्क दिया कि वह निम्न और अपवित्र जातियों से नहीं वरन हिन्दू समाज के ऊच्च वर्ग से हुआ था।

20वीं सदी की शुरुआत में यह भी दावे किए गए कि मुगलकाल में बंगाल के ज़मींदारों और कुछ पुरोहित जातियों ने भी इस्लाम ग्रहण किया था। खड़गपुर के राजाओं (मिदनापुर ज़िला) के विषय में कहा गया कि अकबर के एक सेना नायक से हारने के पश्चात उन्होंने इस्लाम ग्रहण कर लिया क्योंकि पारिवारिक संपत्ति इसी शर्त पर उनके पास बनी रह सकती थी। राजा पुर्दिल सिंह जो उत्तरी बिहार के दरभंगा क्षेत्र के परसौनी से थे, ने मुगल सम्राट के खिलाफ असफल विद्रोह के उपरांत इस्लाम ग्रहण कर लिया। तिप्पेरा (त्रिपुरा) के सरायल परगना के मुस्लिम दीवान परिवार एवं मैमनसिंह के हैबात नगर तथा जंगलबाड़ी परगना के मुस्लिम परिवारों के पूर्वज भी ब्राह्मण थे। दरभंगा क्षेत्र में माझौली के पठान, नरहन राजा के

परिवार के वंशज हैं।

लेकिन ये उदाहरण मुस्लिम जनसंख्या के अति लघु खंड की ही व्याख्या कर सकते थे, जनगणना सारणी से उभरे करोड़ों मुस्लिम कृषकों की संख्या की नहीं।

ब्रिटिश व्याख्या

इसी दौरान ब्रिटिश अधिकारियों के बीच 19वीं सदी के अंतिम दशकों में इस्लामीकरण के मुद्दे पर एक आम राय बनने लगी थी। यहां हम जेम्स वाइज़, जिसने ढाका में दस वर्षों तक सिविल सर्जन के रूप में कार्य किया था, के लेखन का अध्ययन कर सकते हैं। उसने अपने विचार 'दी मुहमडन्स ऑफ इस्टर्न बंगाल' (1894) लेख में स्पष्ट किए हैं।

वाइज़ ने 'अशरफ' प्रवक्ताओं, जिनमें गज़नवी प्रमुख थे, के 'प्रवासी सिद्धांत' को खारिज करते हुए शुरुआत की। उसने लिखा, "मुस्लिम इतिहास ग्रंथों में उत्तरी भारत से बड़े पैमाने पर मुस्लिमों के बंगाल आकर बसने की कोई भी जानकारी नहीं मिलती है; और अकबर के काल में मुस्लिम आक्रमणकारी बंगाल के मौसम को इतना बुरा समझते थे कि वहां कूच करने का आदेश देश निकाले की सजा मानी जाती थी।"

इसके उपरांत वाइज़ ने विभिन्न बंगाली समूहों के मुसलमान बनने के अनेक कारण दिए हैं। सर्वप्रथम वह तलवार धर्म सिद्धांत का उल्लेख करता है और बिना किसी उदाहरण के लिखता है, "जोशीले सैनिकों ने 13वीं और 14वीं सदी में बंगाल की भीरू जातियों में इस्लाम का प्रसार किया। उन्होंने तलवार के बल पर धर्मांतरण किया और पूर्वी सीमा के घने जंगलों के अंदर प्रवेश कर सिलहट के गांवों में बलपूर्वक इस्लाम को स्थापित कर दिया।"

वह यह मत भी स्वीकार करता है कि चटगांव क्षेत्र में अरब व्यापारियों ने अपनी बस्तियां बसा ली थीं। पुनः बिना कोई संदर्भ दिए वह लिखता है कि ये व्यापारी चटगांव के समुद्रीतट पर बड़ी मात्रा में व्यापार करते थे और उन क्षेत्रों में अपने धार्मिक विचारों का प्रसार भी करते थे।

उसके विचार से पूर्वी बंगाल के गांवों से पकड़े गए गुलामों ने भी मुसलमानों की संख्या में वृद्धि की होगी क्योंकि तंग हाल और गरीब लोग बच्चों को मुसलमानों को बेचने हेतु मजबूर हुए होंगे। उसने आगे कहा कि हिन्दू भी धर्मांतरित हुए होंगे क्योंकि "यही एक मात्र रास्ता था जिसके द्वारा हत्या और व्यभिचार के दंड से बचा जा सकता था।" कहना न होगा कि ये सब सिर्फ अनुमान हैं और इनके पक्ष में कोई तथ्य नहीं पेश किए गए।

वाइज़ के लेखन का केन्द्रीय तत्व जो बंगाल के सरकारी अधिकारियों में काफी लोकप्रिय हुआ इस प्रकार था: "जब मुसलमानी सेनाएं बंगाल में प्रविष्ट हुईं तो उनका स्वागत लकड़हारों, भिश्तियों, फटेहाल चांडालों और कैवर्तों ने किया। उन्होंने हर्षपूर्वक उस धर्म को स्वीकार किया जो मानवमात्र की समानता में भरोसा रखता था और जो उस वर्ग का धर्म था जिसने उनके पूर्व के दमनकर्त्ताओं को भी अपने अधीन कर लिया था।"

"हिन्दू धर्म ने अछूतों को उस गांव में बसने से रोक रखा था जिसमें द्विज ब्राह्मण स्वयं रहते थे और जिन्होंने उन्हें वितृष्ण कार्य करने पर मजबूर कर रखा था। हिन्दू धर्म ने उनसे जानवरों जैसा व्यवहार किया और उनके प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति और दया नहीं थी परंतु इसके विपरीत इस्लाम में अमीर-गरीब, गुलाम और मालिक, किसान और राजकुमार, सभी ईश्वर की नज़र में एक समान थे। सबसे बड़ी बात कि ब्राह्मणों के पास इन दलितों में से सर्वाधिक पुण्यात्मा हेतु भी उत्तम पारलौकिक जीवन का आश्वासन न था, जबकि मुल्ला के पास इस जन्म में आदर और मरने के बाद भी दिव्यगति की प्राप्ति का आश्वासन था।"

यह कथन सामाजिक मुक्ति के सिद्धांत का जीवंत और सशक्त उदाहरण है जिसमें इस सिद्धांत के सारे आवश्यक तत्व मौजूद हैं: मसलन हिन्दू समाज व्यवस्था के अति विकसित जातीय स्तर का पूर्व-अस्तित्व, अस्पृश्य कार्यों को करने वाला दलित वर्ग, ब्राह्मणों का दमनकर्ता वर्ग और इस्लाम की सामाजिक समानतावादी विचार-धारा जो लोगों द्वारा 'हर्ष-पूर्वक' अपना ली जाएगी।

लेकिन बंगाल के 'अशरफ' मुसलमानों ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया। वे शायद वाइज़ के 'ब्राह्मणों के क्रूर दमनकर्ता रूप में चित्रण' को स्वीकार कर भी लेते मगर यह मानने को वे बिल्कुल तैयार नहीं थे कि बंगाल के मुसलमान मूलत: वहीं के निवासी थे। इसलिए 1895 में खोंडकर फज़ली रब्बी ने अपनी 'दी ऑरिजिन्स ऑफ दी मुसलमान्स ऑफ बंगाल' प्रकाशित की। इसमें, अबू गज़नवी की तरह इन्होंने भी इस बात से साफ इंकार किया कि बंगाल में कभी भी बड़े पैमाने पर लोगों का स्वेच्छा से या बल पूर्वक धर्मांतरण हुआ था।

एक और जनगणना

रब्बी की पुस्तक के प्रकाशन के तुरंत बाद 1901 की विवादास्पद जनगणना आयी जिसने पुन: उसी विचार को स्थापित किया जिसके

सन् 1931 में भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम आबादी

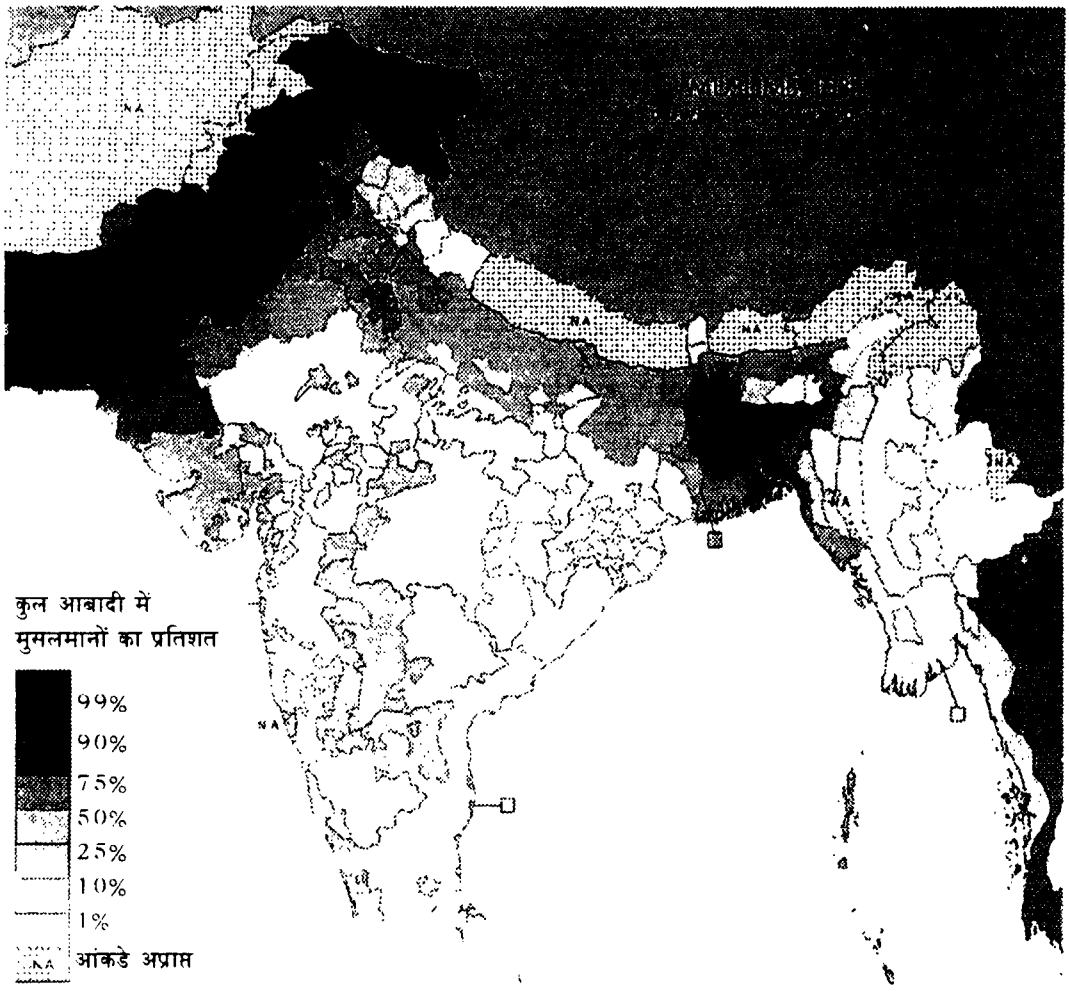

मुस्लिम जनसंख्या वितरण: 1931 में किए गए एक सर्वेक्षण पर आधारित। उस समय के भारत के लगभग सब प्रान्तों में कुछ मुस्लिम आबादी तो मौजूद थी ही, परन्तु साथ ही उत्तर-पश्तिम व उत्तर-पूर्व भारत के ज़्यादातर हिस्सों में मुस्लिम आबादी का प्रतिशत कुल जनसंख्या के पचास प्रतिशत तक था। इनमें से कुछ इलाके ऐसे भी थे जहां मुस्लिम जनसंख्या पचत्तहर फीसदी से भी ज़्यादा थी। उस समय भी यह चर्चा जोशोखरोश से जारी थी कि आखिर इन इलाकों में इस्लाम धर्म का विकास कैसे हुआ। इस संबंध में प्रचलित चारों सिद्धांतों के पक्षधर अपने अपने तर्क प्रस्तुत कर रहे थे और अन्य सिद्धांतों के सामने सवाल रखकर उन्हें चुनौती दे रहे थे।

खिलाफ गज़नवी और रब्बी ने आवाज़ उठाई थी। ई. ए. गैट ने जनगणना की अपनी रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकाला कि बंगाल में 10 में से 9 मुसलमान जिन्होंने अपने आपको 'शेख' बताया वे वास्तव में वहां के मूल निवासी थे। गैट का विश्वास था कि डेल्टा के बाहर की बात तो छोड़िए, बंगाल के अंदर भी शायद ही मुस्लिम आप्रवासियों के एक स्थान से जाकर दूसरे स्थान में जाकर बसने की कोई उल्लेखनीय घटना घटी हो।

उसने तर्क दिया कि इस बात का ध्यान रखते हुए कि मुस्लिम आप्रवासी ज़्यादातर पुरानी राजधानियों के आसपास की उच्च स्तरीय ज़मीन की चाहत रखते थे उन्होंने कभी नोआखाली, बोगरा और बाकरगंज जैसे दलदली चावल के क्षेत्रों में खुद से बसना नहीं चाहा होगा।

1901 की जनगणना की रपट में ई. ए. गैट ने इस बहस को आगे बढ़ाया। इस बहस में गैट का सबसे महत्वपूर्ण योगदान उसका यह अध्ययन था कि बंगाल में मुसलमानों की संख्या उन्हीं क्षेत्रों में अधिक थी जहां की सामाजिक संरचना सरल थी यानी जाति व्यवस्था सबसे कम विकसित थी। उसने बंगाल के पूर्वी भाग में मुसलमानों की स्थानीय पौड और चाण्डाल समुदायों तथा उत्तर के राजवंशी तथा कूच समुदायों से समानताओं को देखते हुए ये टिप्पणी की कि इन क्षेत्रों में हमेशा से दूसरी हिन्दू जातियों की संख्या बहुत ही कम रही है। उत्तरी बंगाल की राजवंशी (जिसमें कूच भी शामिल है) तथा पूर्व की चाण्डाल आदि जातियां मूलतः अनार्य जातियां हैं।

यह मत ढुलमुल और पूर्वाग्रह से भरे विवाद पर चल रहे वैचारिक मंथन को एक स्पष्ट दिशा दे सकता था; क्योंकि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जहां जाति व्यवस्था कम विकसित थी वहां ब्राह्मणवादी प्रभुत्व कम था और निम्न जातियों का दमन भी कम रहा होगा। अतः इस जगह 'सामाजिक मुक्ति' का सिद्धांत लागू नहीं हो पाएगा क्योंकि इन निम्न जातियों के सामने एक सुदृढ़ ब्राह्मणवादी समाज था ही नहीं जिसके विरुद्ध वे विद्रोह करते।

लेकिन गैट ने अपने लेखन के अंतर्निहित तथ्यों से निष्कर्ष नहीं निकाले और यह कहने के सिवा कि अधिकांश मुसलमानों की उत्पत्ति स्थानीय है, उसने इस्लामीकरण का कोई भी तर्कसंगत सिद्धांत नहीं प्रस्तुत किया।

नए अध्ययन

1947 से पूर्व के दशक में तीन मानवशास्त्रीय अध्ययनों ने जो आंकड़े

प्रस्तुत किए वे गैट की राय को पुष्ट करने वाले थे। यद्यपि इनमें अध्ययन विधि, नमूना लेने की तकनीक तथा अध्ययन के क्षेत्रों में अंतर था फिर भी तीनों ही अध्ययनों के निष्कर्ष एक समान थे कि बंगाल के मुसलमान स्थानीय समुदायों के वंशज थे, न कि विदेशियों के।

सर्वप्रथम 1938 में चौबीस परगना ज़िले में एलीन मैकफरलेन ने निष्कर्ष दिया कि "बजबज के मुसलमानों के रक्त समूहों के आंकड़े स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित करते हैं कि ये निम्नजातीय हिन्दू धर्मांतरितों के वंशज हैं।"

तीन वर्ष उपरांत बी. के. चैटर्जी एवं ए. के. मित्रा ने चौबीस परगना में रक्त समूह वितरण का एक और अध्ययन प्रारंभ किया। उन्होंने न केवल निचली जाति के हिन्दू बंगालियों का देहाती मुसलमानों से तुलनात्मक अध्ययन किया बल्कि देहाती मुसलमानों का शहर के मुसलमानों व गैर-बंगाली मुसलमानों के साथ भी तुलनात्मक अध्ययन किया। चौबीस परगना के इस अध्ययन ने यह स्पष्ट किया कि ग्रामीण मुसलमानों और आस-पास के निम्नजाति के हिन्दुओं, महिष्य और बागड़ी जाति के लोगों, में निकट का संबंध है। यहां यह भी निष्कर्ष आया कि शहरी बंगाली मुसलमान उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत के पठानों के अधिक निकट थे, न कि ग्रामीण बंगाली मुसलमानों के। इससे शहरी मुसलमानों के इस मत को बल मिला कि वे बंगाल में आए हुए विदेशियों के वंशज हैं।

अंत में 1960 में डी. एल. मजुमदार और सी. आर. राव ने पूर्व और पश्चिमी बंगाल में 1945 में संग्रहित आंकड़ों के आधार पर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने समूहों के वर्गीकरण के लिए ऊंचाई, ललाट की चौड़ाई एवं नासिका की ऊंचाई का प्रयोग किया और इस निष्कर्ष पर आए: "बंगाल में मुस्लिम आबादी की उत्पत्ति हेतु हमें आदिवासी और गैर मुस्लिम अनुसूचित जातियों के मध्य संभावना देखनी चाहिए .... विभाजन पूर्व के बंगाली मुस्लिमों का रक्त-सीरम संबंधित आंकड़ा भी इसी दिशा में संकेत देता है कि बंगाली मुसलमान न केवल भारत से बाहर के मुसलमानों से असंबद्ध हैं बल्कि उत्तर प्रदेश के शिया और सुन्नियों से भी अलग हैं।" उनका कहना था, "अगर रक्त समूह साक्ष्यों का थोड़ा भी महत्व है तो इससे मुसलमानों की स्थानीय उत्पत्ति का संकेत मिलता है।" लेखकों ने यह भी पाया कि मानवमितीय संकेतकों (खोपड़ी और नासिका के आकार) के संदर्भ में पूर्वी बंगाल के समूह, मुस्लिम

और गैर मुस्लिम दोनों ही, पश्चिमी बंगालियों से मूलतः अलग हैं। इस अंतिम खोज ने बंगाल के अंदर भी एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसने के ऐतिहासिक महत्व को कम कर दिया।

मुस्लिम कृषक वर्ग का प्रकट होना

ऊपर वर्णित किसी भी सिद्धांत (प्रवासी, तलवार धर्म, संरक्षण और सामाजिक मुक्ति) के बहुत कम पैरवीकारों ने अपने सिद्धांत को मौलिक साक्ष्य पर आधारित रखा है। उन्होंने यह भी स्थापित करने की कोशिश नहीं की है कि कब और कहां इस्लाम पहली बार आम लोगों का धर्म बना। किसी भी सुसंगठित ऐतिहासिक सिद्धांत को कालक्रम और भूगोल के स्थापित तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। इससे पहले कि हम व्यापक इस्लामी धर्मांतरण की व्याख्या करें यह स्पष्ट तौर पर स्थापित करना आवश्यक है कि बंगाली मुस्लिम कृषक समुदाय का उद्‌भव कब और कहां हुआ था।

बंगाल में इस्लामी प्रभाव किस रास्ते से आया? अगर हम हिन्द महासागर के नक्शे पर नज़र डालें तो मध्यपूर्व एशिया के साथ इसके सामुद्रिक संबंध का आभास मिलता है।

अरब भूगोलवेत्ता, मसलन सुलेमान ताजिर (मृत्यु 815 ई), इब्न खुर्दादयीह (मृत्यु लगभग 850 ई), मसूदी (मृत्यु 956 ई) और इदरिसी (मृत्यु लगभग 1150 ई) बंगाल से परिचित थे। मसूदी तो दसवीं सदी में वहां रहने वाले उन मुस्लिम व्यापारियों का उल्लेख भी करता है जो दूर-दूर तक समुद्री व्यापार करते थे। दक्षिण पूर्वी बंगाल में चंद्र वंश (लगभग 625-1055 ई) के समय के स्थानीय सिक्कों की परंपरा और लालमई क्षेत्र से अब्बासिद सिक्कों की खोज भी इस क्षेत्र के हिन्द महासागर की व्यापक दुनिया के साथ आर्थिक जुड़ाव की ओर संकेत करता है।

उल्लेखनीय है कि उस वक्त अरब व्यापारियों का इस सागर के व्यापार पर प्रभुत्व था। परंतु सुन्नी इस्लाम की चारों न्याय प्रणालियों – हनाफी, शफीफी, मालिकी और हनाबिली के दुनिया में फैलाव के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि बंगाल का इस्लामीकरण समुद्री रास्ते से नहीं हुआ था। इस्लामी दुनिया में सामान्यतः धर्मांतरित आबादी ने उसी न्याय प्रणाली को अपनाया है जो न्याय प्रणाली उनके क्षेत्र में इस्लाम लाने वालों की थी। हिन्द महासागर के व्यापार से सर्वाधिक घनिष्ठ तौर पर जुड़े दक्षिणी और पश्चिमी अरब में दसवीं शताब्दी उपरांत शफीफी न्याय प्रणाली का प्रभाव था।

इस कारण आने वाली शताब्दियों में तटवर्ती पूर्वी अफ्रीका, भारत का मलाबार तट और दक्षिण पूर्वी एशिया के द्वीपदेशों में शफीफी अरबों के व्यापारिक संपर्कों के फलस्वरूप इस्लामीकरण हुआ और 1500 ई. तक इस सारे क्षेत्र में शफीफी न्याय प्रणाली प्रभावी हो गई। अगर बंगाल में भी इस्लाम का प्रसार समुद्री यात्रा करने वाले शफीफी अरबों द्वारा हुआ होता तो बंगाली मुसलमानों ने भी शफीफी न्याय प्रणाली को ही अपनाया होता।

परंतु 1500 ई. तक और बाद में भी बंगाली मुसलमान मूलत: हनाफी थे जो तब से अब तक गंगा के मैदान और सारे मध्य एशिया में प्रभावी है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि बंगाल का इस्लामीकरण उत्तर पश्चिम से और बरास्ते ज़मीन हुआ है।

लेकिन यह कब और कैसे हुआ? इब्न बतूता को छोड़कर सोलहवीं सदी पूर्व की सारी विदेशी स्रोत सामग्री बंगाल में सिर्फ आप्रवासी या शहरी मुसलमानों का ज़िक्र करती है। इब्न बतूता का वर्णन कुछ अलग है। वह सन् 1345 में प्रसिद्ध संत शाह जलाल से मिलने सिलहट गया था। इस प्रसिद्ध अरब यात्री ने बाद में लिखा, "इन पहाड़ों के बाशिंदों ने इस्लाम को उनके (शाह जलाल के) हाथों से स्वीकार किया और इसी वजह से वे उनके बीच रुक गए।"

लेकिन ऐसा नहीं लगता है कि इब्न बतूता यहां किसान आबादी का उल्लेख कर रहा है। उसके अनुसार जिन्होंने शाह जलाल के मार्फत इस्लाम कबूल किया था वे पहाड़ों के वासी थे, मैदानों के नहीं। ये पहाड़वासी संभवत: झूम खेती करते थे क्योंकि उसने इन लोगों को मैदानों के धान उगाने वाले कृषकों से फर्क बताया है। मैदानी कृषकों को वह स्पष्ट रूप से हिन्दू कहता है।

(सन् 1433 में बंगाल आया चीनी अधिकारी, मा हुआन भी केवल शहरी मुसलमानों का उल्लेख करता है। 1503 के बाद बंगाल आए यूरोपियों के वर्णनों में भी शहरी मुसलमानों का ही वर्णन है। - संपादक)

जहां तक ग्रामीण क्षेत्रों की बात है, यह सिर्फ सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध और विशेष रूप से मुगलों की विजय (1574) के उपरांत की बात है, जब हमें बंगाल में मुस्लिम किसानों के विषय में विश्वसनीय उल्लेख प्राप्त होता है। सर्वप्रथम वेनिस के एक यात्री सीज़र फेडरिची ने 1567 में लिखा कि बंगाल के दक्षिण-पूर्वी कोने पर स्थित सोनद्वीप की संपूर्ण जनसंख्या मुस्लिम थी और इनका 'राजा' भी मुसलमान था। फेडरिची सोनद्वीप की कृषि से भी काफी प्रभावित हुआ, और

उसका मत था कि 'यह दुनिया का सर्वाधिक उर्वर द्वीप है।'

फेडरिची के दौरे के थोड़े ही दिनों बाद अप्रैल, 1599 में एक जेसुइट मिशनरी फ्रांसिस फर्नान्डेज़ ने ईसाई धर्म के प्रसार हेतु पूर्वी बंगाल में मेघना नदी के मार्ग से यात्रा की। राह में उसने स्थानीय लोगों की परंपरा का अध्ययन किया और उन्हें ईसाई धर्म में दीक्षित करने की संभावना पर भी विचार किया। दक्षिण पूर्वी ढाका ज़िले के ग्रामीण क्षेत्र नारायणगंज पहुंचने पर फर्नान्डेज़ ने लिखा, "मैंने इस संभावना का परीक्षण करना प्रारंभ किया कि क्या वहां ईसाई धर्म का प्रचार संभव है तो मैंने पाया कि वहां के लोग लगभग सारे-के-सारे ही मुसलमान हैं।" यह डेल्टा के हृदय क्षेत्र में मुस्लिम किसानों की उपस्थिति का प्रथम संदेहातीत प्रमाण है।

17वीं सदी के अन्य कई यूरोपीय यात्रियों ने बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों में मुस्लिमों के प्रकट होने पर इसी तरह के विचार व्यक्त किए हैं। वे लिखते हैं कि यहां इस्लाम का विकास हाल की घटना है और इसका आरंभ मुगल विजय के बाद से हुआ था। सन् 1629 में, जब मुगल शक्ति डेल्टा क्षेत्र में सुदृढ़ता से स्थापित हो चुकी थी, सेबास्तियो मैनरीक ने लिखा, "शुरुआती दिनों में यहां के सारे राजवंश काफिर धर्मों को ही मानते थे जैसा कि आज भी बंगाल के ज़्यादातर लोग इन धर्मों के समर्थक हैं। हालांकि कुछ लोगों ने इस क्षेत्र में मुगल शासन के आने के उपरांत अपने

सन् 1599 में एक जेसुइट मिशनरी फ्रांसिस फर्नान्डेज़ ने ईसाई धर्म के प्रसार हेतु पूर्वी बंगाल में मेघना नदी के मार्ग से यात्रा की। राह में उसने स्थानीय लोगों की परंपरा का अध्ययन किया और उन्हें ईसाई धर्म में दीक्षित करने की संभावना पर भी विचार किया। दक्षिण पूर्वी ढाका ज़िले के ग्रामीण क्षेत्र नारायणगंज पहुंचने पर फर्नान्डेज़ ने लिखा, "मैंने इस संभावना का परीक्षण करना प्रारंभ किया कि क्या वहां ईसाई धर्म का प्रचार संभव है तो मैंने पाया कि वहां के लोग लगभग सारे-के-सारे ही मुसलमान हैं।"

काफिर धर्मों को त्याग दिया।"

सन् 1666 में फ्रेंच यात्री जॉन डे थेवनाट ने भी 17वीं सदी में प्रचलित मुस्लिम विरोधी रुख व्यक्त करते हुए करीब-करीब यही बात कही है, "यह देश (बंगाल) मुस्लिम और मुगल शासकों से पूर्व पठान शासकों के अधीन बेहतर शासित था क्योंकि तब धर्म की एकरूपता थी। अनुभवों के आधार पर यह पाया गया है कि यहां इस्लाम के आने से अव्यवस्था आई और धर्मों की विभिन्नताओं ने जीवन के तौर-तरीकों में पतन ला दिया।"

मैनरिक की तरह थेवनाट ने भी बंगाल में मुगल-पूर्व युग को मुस्लिम-पूर्व युग ही समझा। उसका मानना था कि यहां इस्लाम मुगलों के समय ही प्रभावी हो पाया था। और यह घटना उसके लिखने के समय से 100 वर्ष से भी कम पुरानी थी। यह भी महत्वपूर्ण है कि इन यूरोपीय लेखकों ने डेल्टा के सिर्फ पूर्वी भाग में ही मुस्लिम किसानों की अधिकता की चर्चा की है, पहले से ही हिन्दुकृत पुराने और पश्चिमी भाग की नहीं। क्योंकि फर्नांडिज़ (जिसने ढाका के ग्रामीण क्षेत्रों में मुस्लिम किसानों की उपस्थिति का ज़िक्र किया था) की यात्रा के ठीक सौ वर्ष बाद एक अन्य जेसुइट पादरी एस. जे. मार्टिन ने सन् 1699 में पश्चिम बंगाल के हुगली क्षेत्र की यात्रा की और देखा कि "यहां की लगभग पूरी जनता ही मूर्ति पूजक है।"

अन्य समकालीन आंकड़े भी मैनरिक और थेवनाट के इस कथन का समर्थन करते हैं कि मुगलों की विजय के पूर्व बंगाल की सामान्य जनता का इस्लामीकरण नहीं हुआ था। सबसे पहला फारसी स्रोत जिसमें इस विषय की चर्चा है, 1638 का है, जब बंगाल के मुगल गवर्नर इस्लाम खां मशहदी ने अराकान के राजा से शिकायत की थी कि पुर्तगाली नोआखाली के तट पर आक्रमण कर वहां की मुस्लिम जनता पर 'लूटमार और अत्याचार' करते हैं।

1660 के दशक के एक अन्य मुगल स्रोत काज़िम बिन मुहम्मद अमीन लिखित आलमगीरनामा कहता है कि उत्तरी बंगाल के घोड़ाघाट (जो कि आज का रंगपुर है) में अधिकांश किसान मुसलमान हैं।

सारांश

अगर 16वीं सदी के अंत या उसके बाद तक ग्रामीण इलाकों में मुसलमानों के बड़ी संख्या में होने का पता नहीं चलता है तो हमारे सामने एक विडम्बना उठ खड़ी होती है। क्या व्यापक स्तर पर इस्लामीकरण मुगलों के काल में हुआ था, जिन्होंने नीतिगत तौर पर धर्मांतरण हेतु कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई थी? कृषि पर

आधारित एक विस्तृत साम्राज्य पर शासन करते हुए मुगल अधिकारियों का प्राथमिक उद्देश्य कृषि उत्पादकता को बढ़ाना था और फिर अधिकतम संभव कर उगाहकर उसका प्रयोग प्रशासन के हर स्तर पर विश्वासी व्यक्ति तैयार करने का राजनैतिक उद्देश्य पूरा करना था।

हालांकि रूढ़िवादी वर्ग 'उलेमा' हमेशा बल देता था कि सम्राट इन मूर्तिपूजक हिन्दुओं को इस्लाम में धर्मांतरित करने का अपना 'कर्त्तव्य' निभाए, परंतु इस तरह की नीति बंगाल में कभी भी लागू नहीं हो सकी, यहां तक कि रूढ़िवादी सम्राट औरंगज़ेब के काल (1658–1707) में भी नहीं।

अतः हमारा ध्यान बंगाल में मुगलकाल की तरफ मुड़ना चाहिए। क्या यह एक महज संयोग था कि डेल्टा क्षेत्र में ज्यादातर मुसलमान कृषक वर्ग मुगल शासन के आगमन के पश्चात उभरा या कोई गूढ प्रक्रियाएं दोनों घटनाओं के मध्य संबंध बनाती हैं?

रिचर्ड ईटन: ऐरीज़ोना विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर।

हिन्दी रुपांतरण: रमेशचंद्र बरगले एवं गौतम पांडेय

रमेशचंद्र बरगले: भूतपूर्व विधायक एवं वकील। होशंगाबाद में रहते हैं।

गौतम पांडेय: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में कार्यरत।

यह लेख रिचर्ड ईटन की किताब, 'द राइज़ ऑफ इस्लाम एंड द बंगाल फ्रंटियर 1204–1760', प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, के एक अध्याय पर आधारित है।